१४५ की **टीका : यहाँ भी अन्यवश का स्वरूप कहा है।** आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य के क्रिया में मानता है और दया, दान आदि में धर्म मानते हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। द्रव्यलिंगधारी मुनि नग्न होते हैं, परन्तु द्रव्यलिंगधारी है। अन्दर धर्म नहीं। अन्तर समकित नहीं। समकित रहित नग्नपना वह मुनिपना नहीं है, वह द्रव्यलिंगधारी है। वह **द्रव्यलिंगधारी (मुनि) कभी छह द्रव्यों में चित्त लगाता है,...** भगवान ने कहे हुए छह द्रव्यों में चित्त लगाता है, वह तो राग है, वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! कठिन बात है।

छह द्रव्य जो भगवान ने कहे, उसमें भी जो चित्त लगाता है, वह परवश पराधीन दु:खी है। यह राग है और राग है, वह दु:ख है, वह परवश है। उसे निश्चय आवश्यक, सत्य आवश्यक नहीं होता। आहाहा! **कभी उनके मूर्त-अमूर्त चेतन-अचेतन गुणों में मन लगाता है...** छह द्रव्यों में चेतन एक है, पाँच अचेतन हैं। उसमें विचार और मन लगावे, वह भी पराधीन है, वह भी राग के आधीन है, क्योंकि पराधीन हुआ और एक द्रव्य में तीन भेद करके विचार करे तो उसे राग ही होता है, धर्म नहीं होता। कठिन बात है, भाई! अभी तो कुछ बिना ठिकाने की चलती है। बाहर की क्रिया करे नग्न, वह धर्म, वह मुनि। यहाँ तो अभी समकिती भी नहीं है। आहाहा! मुनिपना तो कहीं रह गया। समकिती छह द्रव्यों में, छह द्रव्य के गुण में चित्त लगावे तो भी पराधीन मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! उसमें धर्म माने तो वह धर्म है नहीं। छह द्रव्य में, छह द्रव्य में, गुण में चित्त लगावे तो भी पराधीन मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! उसमें धर्म माने तो वह धर्म है नहीं। छह द्रव्य के, छह द्रव्य के गुण के और छह द्रव्य की पर्याय के। पर्याय आयी, देखो!

उनकी अर्थपर्यायों... कभी उनकी-छह द्रव्यों की प्रदेशत्वगुण के अतिरिक्त अनन्त गुण की पर्याय का विचार करता है। कभी व्यंजनपर्याय का विचार करता है, प्रदेशत्वगुण की पर्याय आकार, उसका विचार करता है। **परन्तु त्रिकाल-निरावरण, नित्यानन्द...** आहाहा! उसमें चित्त लगावे, वह कोई धर्म नहीं। छह द्रव्य, छह द्रव्य के गुण और छह द्रव्य की पर्याय, इन तीनों में चित्त लगावे, वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा!

जगत को अभी तो सम्यग्दर्शन किसे कहना और सम्यग्दर्शन कैसे उत्पन्न होता है, इसकी खबर नहीं और मुनिपना हो गया, नग्नपना ले लिया। मुनिपना बिना मोक्ष नहीं होता।

परन्तु कौन सा मुनिपना ? सम्यग्दर्शन में पहले अन्तर आत्मा के आनन्द का अनुभव होता है। आहाहा! छह द्रव्य और उसके गुण-पर्याय का विचार छोड़कर अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। सम्यग्दर्शन प्रथम चौथे गुणस्थान में, आहाहा! उसका तो ठिकाना नहीं और छह द्रव्य के विचार, गुण और पर्याय की धारा और (उसके विचार करे)। आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य की सब धारा के विचार करता है। अरे! आत्मा में भी द्रव्य, गुण और पर्याय तीन भेद का विचार करता है, वह भी पराधीन है, वह धर्मी नहीं। आहाहा! गजब बात है।

परन्तु त्रिकाल-निरावरण,... प्रभु आत्मा जो अन्दर है, वह तो त्रिकाल निरावरण है। अन्दर चैतन्यमूर्ति आत्मा जो है, वह तो त्रिकाल निरावरण है। **नित्यानन्द जिसका लक्षण है...** जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का नित्यानन्द लक्षण है। आहाहा! अन्दर जो भगवान आत्मा नित्य आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति है, उस अतीन्द्रिय आनन्द में तो दृष्टि लगाते नहीं और त्रिकाली निरावरण प्रभु में दृष्टि लगाते नहीं और बाहर की क्रिया पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण और द्रव्य-गुण-पर्याय के विचार में चित्त को लगाते हैं, वे पराधीन हैं। उन्हें मुनि नहीं कहते। आहाहा! अन्दर है या नहीं ?

नित्यानन्द जिसका लक्षण... प्रभु अन्दर आत्मा वस्तु जो है, वह त्रिकाल निरावरण है, नित्य आनन्द लक्षण है। अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय अमृत से भरपूर है और **ऐसे निजकारण-समयसार...** अपना आत्मा निज कारणसमयसार अर्थात् ध्रुव नित्यानन्द त्रिकाली। परद्रव्य का भी विचार नहीं, अपने में द्रव्य-गुण-पर्याय तीन का भी विचार नहीं, अपनी एक समय की पर्याय की ओर भी लक्ष्य नहीं... आहाहा! त्रिकाल निरावरण नित्यानन्द के ऊपर **समयसार के स्वरूप में...** नित्यानन्द त्रिकाल निरावरण ऐसा अन्दर भगवान आत्मा है। उसमें **लीन सहजज्ञानादि शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत...** जो सहज ज्ञान, त्रिकाली ज्ञान, त्रिकाली आनन्द, त्रिकाली शान्ति, त्रिकाली प्रभुता, ऐसे गुण के आधारभूत **निज आत्मतत्त्व...** आहाहा! भगवान के दर्शन करना और भगवान की यात्रा-वात्रा करना, वह सब शुभराग है। वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात! अपना भी तीन प्रकार का भेद करके विचार करना—द्रव्य त्रिकाली, उसके ज्ञानादि गुण और पर्याय ऐसे तीन भेद का विचार करना, वह भी राग है, वह धर्म नहीं। आहाहा! समकित दृष्टि धर्म उसे कहते हैं। प्रथम चौथा गुणस्थान। सम्यक् मुनिपना तो आगे बात है।

त्रिकाल-निरावरण, नित्यानन्द जिसका लक्षण है, ऐसे निजकारण-समयसार के स्वरूप में लीन सहजज्ञानादि शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत निज आत्मतत्त्व में कभी भी चित्त नहीं लगाता,... अज्ञानी अपना आनन्दस्वरूप प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर नाथ है, उसमें तो कभी चित्त लगाता नहीं और द्रव्य-गुण-पर्याय में, परद्रव्य में, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि में चित्त लगाता है, तो उसे धर्म नहीं होता। आहाहा! गजब बात है। मानना कठिन पड़ता है। अभी मान्यता का ठिकाना नहीं, वहाँ मुनिपना कहाँ से आया? और मुनिपने बिना मोक्ष नहीं होता। मुनिपना भी समकित बिना नहीं होता और समकित अपने त्रिकाली द्रव्य के आश्रय बिना नहीं होता। वह समकित कोई बाहर के द्रव्य-गुण-पर्याय का विचार करने से या स्वद्रव्य का विचार करने से या परमात्मा की भक्ति, विचार और यात्रा करने से बिल्कुल समकित नहीं होता। आहाहा! वह तो राग है, भक्ति का राग है। आहाहा! है?

शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत... पवित्र गुण और पवित्र पर्याय, आनन्द गुण और आनन्द दशा के आधारभूत आत्मतत्त्व, उसमें कभी चित्त नहीं जोड़ता। आहाहा! उसमें— अन्तर आनन्द में कभी चित्त नहीं जोड़ता। **उसे तपोधन को भी...** वह तपोधन मुनि नग्न दिगम्बर हो तो भी। **उस कारण से ही (अर्थात् पर विकल्पों के वश होने के कारण से ही) अन्यवश कहा गया है।** वह परवश है। धर्म नहीं। आहाहा! वह अधर्म के वश हुआ है। आहाहा! द्रव्य-गुण-पर्याय तीन का विचार करने से और छह द्रव्य का विचार करने से तथा परमात्मा की भक्ति, यात्रा आदि करने से राग होता है, परवश होता है, दुःखी होता है और उसमें धर्म माने तो मिथ्यादृष्टि होता है। आहाहा! ऐसी बात है।

इस आत्मा के अतिरिक्त कोई भी पदार्थ, दूसरा पदार्थ चाहे तो भगवान हो और चाहे तो अन्न, पानी, आहार, औषध आदि चीज़ हो... आहाहा! उन पर लक्ष्य रहने से राग उत्पन्न होता है। वह पराधीन है। वह आत्मा पराधीन है, धर्मी नहीं। वह तो पराधीन अधर्म करता है। आहाहा! अपना जो त्रिकाली आनन्दस्वरूप लक्षण भगवान में कभी चित्त नहीं जोड़ता। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' अनन्त बार मुनि हुआ, नग्न दिगम्बर पंच महाव्रतधारी अनन्त बार हुआ। हजारों रानियाँ छोड़कर, करोड़ों रुपयों की आमदनी छोड़कर, दुकान छोड़कर मुनि हुआ परन्तु मिथ्यादृष्टि (रहकर) उस राग की क्रिया में धर्म माननेवाला। आहाहा! वह मुनि तो नहीं, समकिती भी नहीं। ऐसी बात है। जगत से उल्टी है। आहाहा!

अपना आत्मा जो शुद्ध गुण-पर्याय का आधार। आधार, हों! शुद्ध गुण-पर्याय का विचार, ऐसा नहीं। शुद्ध गुण-पर्याय का (आधार)। शुद्ध पवित्र अनन्त गुण और अनन्त पर्याय का आधार जो आत्मा द्रव्य वस्तु एकरूप चीज़, उसमें चित्त नहीं लगाता और उसे छोड़कर अन्यत्र चित्त लगाता है तो उसे अधर्म होता है, धर्म नहीं होता।

मुमुक्षु : वह तो प्रमाण का द्रव्य हुआ। शुद्ध गुण-पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। प्रमाण-फ्रमाण का यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो एकरूप वस्तु द्रव्य की दृष्टि निश्चय, वह सम्यक् है।

मुमुक्षु : पर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का विचार भी नहीं। अकेला त्रिकाली द्रव्य। कहा नहीं? **शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत निज...** आत्मद्रव्य। पर्याय नहीं। क्या कहा? कठिन बात है, भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का मार्ग कोई अलौकिक है। अभी तो लोगों में गड़बड़ (हो गयी है)। व्रत, तप, भक्ति, पूजा और यात्रा वह धर्म.. धर्म.. धर्म.. धर्म.. धर्म है। (वह तो) राग है, विकार है, वह धर्म नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि शुद्ध गुण-पर्याय नहीं, शुद्ध गुण-पर्याय के आधार आत्मतत्त्व। समझ में आया? आहाहा! **शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत...** एकरूप। **निज आत्मतत्त्व...** भगवान भी नहीं। निज आत्मतत्त्व। अपना अन्तरतत्त्व सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध आनन्द और शुद्ध ज्ञान का गंज / पिण्ड। अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा अन्दर है। अतीन्द्रिय आनन्द। विषय का आनन्द, वह तो जहर है। पाँच इन्द्रिय के विषय, उनका जो सुख या कल्पना है, वह तो काला जहर है, काले नाग का जहर है। आहाहा! यहाँ तो शुद्ध गुण और पर्याय, वह नहीं परन्तु शुद्ध गुण-पर्याय का आधार आत्मा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! उसके गुण और पर्याय तथा द्रव्य - तीन का विचार करना, वह पराधीन है, आस्रव है, राग है। यह तो शुद्ध गुण-पर्याय का आधार एकरूप जो वस्तु। आहाहा! ऐसा सुना न हो, इसलिए कठिन पड़ता है। मार्ग तो ऐसा है। अभी तो सब गड़बड़ हो गयी है। सब सम्प्रदाय में यह करना... यह करना... यह करना... व्रत पालना और व्रत पालना, वह धर्म है। व्रत तो आस्रव है, आस्रव वह दुःख है। दुःख, वह धर्म नहीं, अधर्म है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु!

यहाँ तो प्रभु आत्मा एक के अतिरिक्त दूसरे का विचार करना और दूसरे पर लक्ष्य जाना, चाहे तो गिरनार, सम्मेदशिखर और शत्रुंजय तथा चाहे तो तीन लोक के नाथ का समवसरण (होवे), समवसरण में जाकर भगवान की आरती उतारे तो वह सब राग है, धर्म नहीं। अनन्त बार ऐसा किया है। महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकर का कभी विरह नहीं होता। वहाँ अनन्त बार जन्मा है। प्रत्येक जीव ने वहाँ अनन्त बार जन्म लिया है। जन्म लेकर भगवान के समवसरण में भी अनन्त बार गया है। समवसरण में जाकर भगवान की आरती अनन्त बार उतारी है। आहाहा! हीरा-रत्न की थाली, कल्पवृक्ष के फूल (लेकर आरती उतारी है)। आहाहा! वह शुभराग है, धर्म नहीं।

जितना परद्रव्य (का) आश्रय होता है, वह कोई धर्म नहीं है। स्वद्रव्य का आश्रय हो, उसका नाम धर्म है। यह बहुत संक्षिप्त बात है। सुना भी न हो कभी। बाहर की प्रवृत्ति में धर्म मानता है। अभी तो समकित का ठिकाना नहीं (तो) मुनिपना कहाँ से आया? विपरीत प्ररूपणा करता है कि भगवान के दर्शन करने से धर्म होता है, यात्रा करने से धर्म होता है। यह मान्यता मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की है। वह जैन नहीं है। उसे जैन की श्रद्धा नहीं है। पण्डितजी! ऐसी बात है, भाई! विजयभाई! समझ में आया? कठिन बात है। आहाहा! पहले कभी यहाँ आये थे? आहाहा!

अरे! यहाँ आचार्य महाराज कुन्दकुन्द आचार्य की टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि। यह मुनि, वे टीका करनेवाले हैं। वे टीका करनेवाले ऐसा कहते हैं कि तेरे द्रव्य-पदार्थ के अतिरिक्त दूसरा कोई भी अरिहन्त, पंच परमेष्ठी का लक्ष्य करेगा तो राग होगा; धर्म नहीं। आहाहा! और पंच महाव्रत धारण करे, वह भी धर्म नहीं और परजीव की मैं दया पाल सकता हूँ, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। पर की दया, आत्मा पालन नहीं कर सकता। परद्रव्य है, उसे आत्मा स्पर्श नहीं करता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। उसके बदले दया पाल सकता हूँ, ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि है, जैन नहीं। वह तो जैन नहीं परन्तु उसकी दया का भाव आया, वह राग है। वह राग हिंसा है। आत्मा के स्वरूप की हिंसा है। उस हिंसा को धर्म माने, वह भी जैन नहीं, मिथ्यादृष्टि है। कभी सुनी नहीं हो, ऐसी बात है।

यहाँ तो पैंतालीस वर्ष से चलता है। पैंतालीस वर्ष यहाँ हुए। समझ में आया? ४० और ५=४५ वर्ष इस जंगल में हुए। पैंतालीस वर्ष में आये थे और पैंतालीस वर्ष यहाँ हुए।

९१ वर्ष चलते हैं। शरीर को ९१वाँ वर्ष चलता है। ९० और १। ९१ समझते हो? ९१। ९० के ऊपर १। ९० के ऊपर १। पैंतालीस वर्ष यहाँ हुए और पैंतालीस वर्ष में आये थे। यह बात तो पैंतालीस वर्ष से चलती है। तीस लाख पुस्तकें तो प्रकाशित हो गयी है। बाईस लाख यहाँ से और आठ लाख जयपुर से और अब सात लाख मुम्बई से प्रकाशित होगी। बहुत पुस्तकें प्रकाशित होती है, परन्तु पढ़ने के लिये निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! और पढ़े तो वापस वह परद्रव्य से लाभ होगा, ऐसी मान्यता निकालता है। आहाहा! वह मिथ्यात्व है। साधु हुआ हो तो भी वह मिथ्यादृष्टि है, साधु नहीं। पुण्य महाव्रत में धर्म मनावे, माने तो मिथ्यादृष्टि है क्योंकि महाव्रत, वह आस्रव है और आस्रव, वह राग है; राग है, वह दु:ख है। आहाहा! उसे धर्म मनावे और (उससे) धर्म होता है, (ऐसा माने) वह जैन नहीं; मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! ऐसी बात!

यहाँ यह कहते हैं। आत्मा के अतिरिक्त दूसरी चीज़ नहीं। वह तो नहीं। अब आत्मा में भी द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसे तीन भेद भी नहीं परन्तु आत्मा जो है, वह शुद्ध गुण त्रिकाली पवित्र गुण अनन्त है और उसकी पर्याय है, उन गुण और पर्याय का आधारभूत तत्त्व एक है। एक उस पर दृष्टि नहीं लगाते, उस पर चित्त नहीं लगाते, उस पर लक्ष्य नहीं करते तो वे मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत... उसमें ऐसा भी आया कि आत्मा की पर्याय का आधार आत्मा है। आत्मा की पर्याय का आधार दूसरी चीज़ नहीं है। आया न? क्या कहा? सम्यग्दर्शन की पर्याय जब उत्पन्न होती है तो अपने त्रिकाल आत्मा के आधार से उत्पन्न होती है। वह सम्यग्दर्शन की पर्याय परद्रव्य के अवलम्बन से कभी उत्पन्न नहीं होती। सम्यग्दर्शन की पर्याय और त्रिकाली गुण, वह पर्याय और गुण पर के आधार से नहीं है। वह पर्याय और गुण पर के आधार से नहीं है। वह पर्याय और गुण अपने आधार से है। आहाहा! है?

शुद्धगुणपर्यायों के आधारभूत... आहाहा! यह तो सिद्धान्त है। यह कोई वार्ता नहीं, कथा-वार्ता नहीं। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ भगवान जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि है। साक्षात् भगवान महाविदेह में विराजते हैं। उनके पास से आया है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे। संवत् ४९। दो हजार वर्ष पहले। कुन्दकुन्दाचार्य नग्न मुनि, यह पुस्तक बनानेवाले

वहाँ गये थे। आठ दिन रहे थे। आठ दिन रहकर भगवान को समवसरण में सुना। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया कि भगवान ऐसा कहते हैं। अभी कहेंगे कि भगवान ऐसा कहते हैं। नीचे आयेगा।

आधारभूत निज आत्मतत्त्व में कभी भी चित्त नहीं लगाता, उसे तपोधन को भी... वह मुनि नग्न हो तो भी **उस कारण से ही (अर्थात् पर विकल्पों के वश होने के कारण से ही) अन्यवश कहा गया है।** परवश है, पराधीन है। आहाहा! अपना त्रिकाली द्रव्य भगवान, एकरूप शुद्ध गुणपर्याय का आधारभूत तत्त्व-द्रव्य, उस पर दृष्टि नहीं करते, उसकी पहिचान नहीं करते, वहाँ चित्त नहीं लगाते, वे सब परवश, पराधीन मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! ऐसी बात है। अब यह कहेंगे कि यह कहता कौन है? यह कहेंगे कि यह वाक्य है किसका?

जिन्होंने दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्मरूपी तिमिरसमूह का नाश किया है... उनका यह वाक्य है। आहाहा! जिन्होंने दर्शनमोहनीय-मिथ्यात्व, चारित्रमोहनीय-राग-द्वेष यह कर्मरूपी तिमिर अर्थात् अज्ञानसमूह का नाश किया है। आहाहा! उन परमात्मा ने यह कहा है। यह किसी की कल्पना की या आचार्य की कल्पना की बात नहीं है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव... आहाहा! सीमन्धरस्वामी केवली भगवान विराजमान हैं, उनकी यह वाणी है। आहाहा! दर्शनमोह का नाश किया हो, चारित्रमोह का नाश किया हो। **और परमात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न...** वापस वे परमात्मा हुए किस प्रकार? परमात्मा हुए किस प्रकार? कि **परमात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न...** अपना परमस्वरूप भगवान आत्मा, निर्मलानन्द की भावना - एकाग्रता से उत्पन्न हुए **वीतरागसुखामृत के...** वीतराग के आनन्द के अमृत का पान। वे भगवान केवली वीतराग आनन्द को पीते हैं। आहाहा!

वीतरागसुखामृत के... सुखरूपी अमृत के **पान में जो उन्मुख (तत्पर) हैं...** अन्तर आनन्द के अनुभव में भगवान तत्पर हैं। सर्वज्ञ वीतराग तीर्थंकर वाणी कहने में तत्पर हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! वाणी तो जड़ है। जड़ तो जड़ से निकलती है। दिव्यध्वनि भी जड़ से निकलती है। भगवान तो **वीतरागसुखामृत के पान में जो उन्मुख (तत्पर) हैं...** है? आहाहा! इन्द्रिय के विषय दुःख-जहर है। अपना अतीन्द्रिय आनन्द स्वभाव आत्मा उस अतीन्द्रिय आनन्द अमृत वीतरागी सुख, वीतरागी सुख-अमृत के पान में जो तत्पर हैं। **ऐसे श्रमण वास्तव में महाश्रमण हैं;...** ऐसे साधु को वास्तविक साधु कहते हैं।

आहाहा! विजयभाई! समझ में आया? घर में पुस्तकें तो बहुत हैं। यहाँ से वहाँ पुस्तकें तो बहुत आयी है परन्तु धन्धे के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! क्या कहा?

यह अपने स्वद्रव्य के अतिरिक्त परमात्मा कहते हैं कि तू मेरे पर लक्ष्य करेगा तो तुझे राग होगा, धर्म नहीं होगा और तुझमें भी तीन भेद डालेगा (अर्थात्) द्रव्य-गुण-पर्याय तीन भेद डालकर विचार करेगा तो राग होगा। ऐसा कौन कहता है?-कि जो **भगवान परमात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न वीतरागसुखामृत के पान में जो उन्मुख (तत्पर) हैं ऐसे श्रमण वास्तव में महाश्रमण हैं;...** वे साधु, वह साधु है। आहाहा! उन साधु को साधु कहते हैं। वस्त्र रखे और मुनि माने, वह मुनि नहीं है। वस्त्र छोड़कर नग्न हुए, वे भी मुनि नहीं है। अन्तर चीज़ दृष्टि में ली नहीं, आत्मा का अनुभव समकित हुआ नहीं तो वह मुनि नहीं है और समकिती नहीं है। आहाहा!

ऐसे श्रमण वास्तव में महाश्रमण हैं; परम श्रुतकेवली हैं;... यह श्रुतकेवली लिये। केवली नहीं लिये। परम श्रुतकेवली। **वे वास्तव में अन्यवश का ऐसा (उपरोक्तानुसार) स्वरूप कहते हैं।** आहाहा! श्रुतकेवली गौतम गणधर और उनके पश्चात् जो परम्परा से श्रुतकेवली हुए। वहाँ-महाविदेह में भी श्रुतकेवली हैं। परमात्मा के निकट पूर्ण श्रुतकेवली आत्मा के आनन्द में रहनेवाले। ऐसे श्रुतकेवली हैं। **वे वास्तव में अन्यवश का...** परवश का। अन्तर द्रव्य-गुण-पर्याय तीन का विचार करनेवाले परवश का ऐसा स्वरूप कहते हैं। आहाहा! कोई व्यक्ति की बात नहीं है।

महाश्रुतकेवली गणधर भगवान के निकट सीधा सुना है और सीधा आत्मा में से प्राप्त किया है। आत्मा में से आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लिया है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद। वह स्वाद कैसा होगा? यह दूधपाक का स्वाद, यह शक्कर का स्वाद, धूल का स्वाद, वह स्वाद भी आत्मा नहीं लेता। वह तो जड़ है। उस जड़ पर लक्ष्य करके राग करता है, उस राग का स्वाद लेता है। पर का स्वाद नहीं। आहाहा! रोटी का, दाल-भात का, चूरमे का, लड्डू का, शक्कर का स्वाद कभी भी अज्ञानी आत्मा भी नहीं लेता। उस ओर का लक्ष्य करके 'यह ठीक है' ऐसा राग करता है, उस राग का स्वाद है। आहाहा! श्रमण को रागरहित आत्मा के आनन्द का स्वाद है। परसन्मुख का लक्ष्य छूट गया है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! परमसत्य है। आहाहा! सुनने में कठिन पड़ती है।

अपनी चीज़ है। अपनी चीज़ के अतिरिक्त दूसरी चीज़ भगवान पंच परमेष्ठी का भी विचार करने में रुके तो राग है। (उससे) पुण्यबन्ध होगा, धर्म नहीं होगा। वह तो नहीं होगा परन्तु अपने आत्मा में द्रव्य-वस्तु और गुण-शक्ति, पर्याय-अवस्था, तीन का विचार करेगा तो भी धर्म नहीं होगा। आहाहा! तो भी राग होगा। तीन हुए तो तीन के विचार में राग होगा। धर्म नहीं होगा। समकित नहीं होगा। तीन का विचार करने से समकित नहीं होगा। पंच परमेष्ठी का विचार करने से समकित नहीं होगा। अपने शुद्ध गुण-पर्याय का विचार करने से समकित नहीं होगा। शुद्ध गुण-पर्याय का आधार आत्मा है। उसका अन्दर विचार करने से समकित होगा। आहाहा! ऐसी बात है। दुनिया को कठिन लगे। दुनिया में तो जहाँ हो वहाँ व्रत पालो, व्रत करो, अहिंसा करो, जीव की दया पालन करो, सत्य बोलो, झूठ मत बोलो तो धर्म होगा। धूल भी धर्म नहीं होगा। पंच महाव्रत चुस्त पालन करे, उसके लिये चौका बनाकर आहार ले, तब तो मिथ्यादृष्टि है। चौका बनाकर ले, उसके लिये बनावे और दे तथा साधु मनावे, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि इसके लिये (बनाया हुआ) आहार न ले, चौका बनाकर न ले, निर्दोष ले, अन्दर छह द्रव्य के विचार में रुके, पर विचार में न रुके, तो भी वह अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, परवश है। आहाहा! क्योंकि राग उत्पन्न होता है।

एक स्वरूप चिदानन्द प्रभु, शुद्ध गुण और शुद्धपर्याय / अवस्था / हालत का धारक जो शुद्ध तत्त्व भगवान है, उस पर चित्त लगाने से सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान वहाँ से होता है। इसके अतिरिक्त एकड़े रहित शून्य है। आहाहा! कितनों ने तो कभी सुना भी नहीं होगा। ऐसी बात अभी चलती नहीं। गड़बड़-गड़बड़। क्रिया करो, यह करो... और यह करो,... यह करो... यह करो... आहाहा!

यह बात कौन कहता है? कठिन बात ली है न? कि अपने अतिरिक्त पंच परमेष्ठी का ध्यान भी राग है और अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तीन का विचार भी राग है। इन तीनों का राग तो धर्म किस प्रकार होगा? तो कहते हैं, आत्मा जो त्रिकाल शुद्ध गुण-पर्याय का आधार द्रव्य है, उस द्रव्य पर दृष्टि पड़ने से समकित होता है। यह कौन कहते हैं? महाश्रमण कहते हैं, श्रुतकेवली कहते हैं। आहाहा! है?

परम श्रुतकेवली हैं;... महाश्रमण हैं। **वे वास्तव में अन्यवश का...** पराधीन जीव का ऐसा स्वरूप कहते हैं। आहाहा! पराधीन है... पराधीन है। अपना नित्यानन्द प्रभु, सहजानन्दस्वरूप प्रभु के अन्दर नहीं जाते और अन्तर का अवलम्बन नहीं लेते और बाहर के क्रियाकाण्ड में सब धर्म मानते हैं, वे पराधीन मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : परम सत्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम सत्य तो यह बात है। भाई! आज माने, कल माने, बाद में माने। यह वस्तु माने बिना इसके जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा। दुनिया की सिफारिश चले या अधिक माननेवाले ऐसे हैं, इसलिए सत्य है। सत्य को ऐसी संख्या की आवश्यकता नहीं है। सत्य को अधिक माने तो सत्य है और थोड़े माने तो सत्य नहीं, ऐसा नहीं है। सत्य तो सत्य ही है। माननेवाला एक हो तो भी सत्य तो सत्य ही है। आहाहा!

यह सत्य भगवान ने कहा है। अनन्त श्रुतकेवली, त्रिलोकनाथ के निकट सीधा सुना है, ऐसे श्रुतकेवली, गणधर - अनन्त गणधरों ने ऐसा कहा है कि परद्रव्य का ध्यान करेगा तो राग होगा। तुझमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीन का भेद डालकर ध्यान करेगा तो राग होगा। आहाहा! तेरा आत्मा जो अन्दर परमानन्द की मूर्ति प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय ज्ञान का धाम, अतीन्द्रिय शान्ति का धाम, अतीन्द्रिय शान्ति का सागर-समुद्र प्रभु है। ऐसा जो तत्त्व-चीज़ है, उसमें भेद डाले बिना उस तत्त्व पर दृष्टि देने से समकित होता है। धर्म की पहली सीढ़ी ऐसे होती है। धर्म का पहला सोपान। आहाहा! यह तो पूरे दिन बाहर की क्रिया करे, यह सामायिक की, प्रौषध किये। कहाँ सामायिक थी? समकित बिना सामायिक कैसी? सामायिक में तो समता का लाभ है। समता में वीतराग का लाभ है। वीतराग का लाभ कब होगा? वीतरागी आत्मा में दृष्टि लगाकर एकाग्र होवे तो वीतराग का लाभ होगा। आहाहा! यह तो कुछ भान नहीं होता और आसन बिछाकर सामायिक की, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किये। सब भ्रम है। वह धर्म नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

भगवान! यहाँ तो भगवानरूप से बुलाते हैं। आत्मा तो अन्दर भगवान है। समयसार की ७२वीं गाथा में आत्मा को भगवान कहकर बुलाते हैं। भगवान! तुझमें शुभ-अशुभ भाव होते हैं, वह मलिन दुःख है। वह तेरी चीज़ नहीं, प्रभु! ऐसा कहते हैं। भगवान कहते

हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव / विकल्प उठता है, वह तो राग है, दुःख है। भगवान! वह तेरा स्वरूप नहीं है। ऐसा ७२ गाथा में है। समयसार में भगवानरूप से बुलाया है। आचार्यों ने भगवानरूप से बुलाया है। तेरा स्वरूप भगवान है। आहाहा! और तू भगवान होने के योग्य है परन्तु तेरी दृष्टि जहाँ भगवान है, वहाँ नहीं जाती और दूसरों में रहती है। आहाहा! समझ में आया?

टीकाकार ने कैसा कहा कि भाई! ऐसी बात महँगी है, दुर्लभ है, वह हम अकेले नहीं कहते। श्रुतकेवलियों ने कही है। भगवान के निकट सीधे सुननेवाले गणधर। वहाँ महाविदेह में परमात्मा के पास गणधर विराजते हैं। यहाँ भी महावीर (भगवान) के निकट गौतम गणधर थे। वे सब गणधर अनन्त तीर्थंकर के जितने गणधर श्रुतकेवली हैं, उन सबका यह कथन है। आहाहा! उन्होंने यह कहा है। कोई एक व्यक्ति ने कहा है और कल्पना से कहा है, ऐसा कोई सम्प्रदाय बाँधने के लिये कहा है, (ऐसा नहीं है)। वस्तु का स्वरूप ऐसा है, ऐसा भगवान त्रिलोकनाथ के श्रुतकेवली ने कहा है। आहाहा!

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

(अनुष्टुप्)

आत्मकार्यं परित्यज्य दृष्टादृष्टविरुद्धया।
यतीनां ब्रह्मनिष्ठानां किं तया परिचिन्तया।।

श्लोकार्थः आत्मकार्य को छोड़कर... आहाहा! शुद्ध चैतन्यगुण और पर्यायों का धारक द्रव्य, उस वस्तु के कार्य को छोड़कर, निज द्रव्य की दृष्टि छोड़ी तो पर्याय का कार्य नहीं हुआ। आत्मकार्य तो पर्याय है, परन्तु आत्मदृष्टि नहीं की तो कार्य नहीं हुआ। **आत्मकार्य को छोड़कर...** तेरा आत्मा का कार्य अर्थात् मोक्षमार्ग की निर्मल पर्याय छोड़कर **दृष्ट तथा अदृष्ट से विरुद्ध ऐसी उस चिन्ता से...** भगवान आदि चीज़ देखने में आती है, नहीं दिखती ऐसी चीज़ धर्मास्ति आदि, ऐसी चिन्ता। उनकी चिन्ता। **(-प्रत्यक्ष तथा परोक्ष से विरुद्ध ऐसे विकल्पों से)...** आहाहा! महा **ब्रह्मनिष्ठ यतियों को...** ब्रह्म अर्थात् आनन्द में लीन होनेवाले यति, मुनि को **क्या प्रयोजन है ?** दूसरे का क्या प्रयोजन है? आहाहा! अपने आत्मा के आनन्द का कार्य करना है। मुनि को दूसरे कार्य हैं कहाँ? आहाहा! ऐसा कहा, देखो!

ब्रह्मनिष्ठ यतियों को... ब्रह्म अर्थात् आनन्द। अतीन्द्रिय आनन्द में लीन मुनि हैं, उन्हें **क्या प्रयोजन है ?** दृष्ट और अदृष्ट पदार्थ के विचार में रुकना... आहाहा! क्या कहा ? **आत्मकार्य को छोड़कर दृष्ट तथा अदृष्ट से विरुद्ध...** अपने से (अन्य ऐसे) दृष्ट और अदृष्ट पदार्थ, वे विरुद्ध हैं। अपने से पर ऐसे दृष्ट और अदृष्ट की चिन्ता में रुकना, वह विरुद्ध है। है ? **आत्मकार्य को छोड़कर...** अपना प्रभु अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसके आनन्द का कार्य छोड़कर **दृष्ट तथा अदृष्ट से विरुद्ध...** अपने आत्मा से विरुद्ध सब। आहाहा! दिखायी दे, वह चीज़ या अरूपी, न दिखायी दे, वे सभी चीज़ें विरुद्ध हैं। आहाहा!

ऐसी उस चिन्ता से (-प्रत्यक्ष तथा परोक्ष से विरुद्ध ऐसे विकल्पों से) ब्रह्मनिष्ठ यतियों को क्या प्रयोजन है ? आहाहा! अपनी चीज़ आत्मा आनन्दस्वरूप विराजता है। अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार है। अन्तर में आत्मा वीतरागमूर्ति है, वीतरागस्वरूप है, ऐसे वीतरागस्वरूप में लीन होनेवाले ब्रह्मनिष्ठ, उसे दूसरे का क्या काम है ? उसे दूसरे से क्या काम है कि मैं उपदेश दूँ तो दुनिया समझे और यह और वह... इसका तुझे क्या काम है ? उपदेश वाणी जड़ है और वह समझेगा तो उसकी पर्याय से समझेगा; तेरी भाषा से नहीं समझेगा। आहाहा! गजब काम है। **ब्रह्मनिष्ठ यतियों को क्या प्रयोजन है ?** आहाहा!

श्लोक-२४६

और (इस १४५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

(अनुष्टुप्)

यावच्चिन्तास्ति जन्तूनां तावद्भवति सन्सृतिः।
यथेन्धन-सनाथस्य स्वाहा-नाथस्य वर्धनम्॥२४६॥

(वीरछन्द)

जब तक ईंधन तब तक अग्नि सदा प्रज्ज्वलित रहती है।
जब तक जीवों को चिन्ता है तब तक वे संसारी हैं॥२४६॥

[श्लोकार्थः] जिस प्रकार ईंधनयुक्त अग्नि वृद्धि को प्राप्त होती है (अर्थात् जब तक ईंधन है, तब तक अग्नि की वृद्धि होती है); उसी प्रकार जब तक जीवों को चिन्ता (विकल्प) है, तब तक संसार है॥२४६॥

श्लोक -२४६ पर प्रवचन

और (इस १४५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

अब स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव टीका करनेवाले (श्लोक कहते हैं)

यावच्चिन्तास्ति जन्तूनां तावद्भवति सन्सृतिः।
यथेन्धन-सनाथस्य स्वाहा-नाथस्य वर्धनम्॥२४६॥

श्लोकार्थः जिस प्रकार ईंधनयुक्त अग्नि वृद्धि को प्राप्त होती है... ईंधन। अग्नि में ईंधन डालने से अग्नि प्रज्वलित होती है, अग्नि वृद्धि पाती है। आहाहा! अग्नि में ईंधन डालने से अग्नि वृद्धि पाती है। **(अर्थात् जब तक ईंधन है, तब तक अग्नि की वृद्धि होती है),...** आहाहा! **उसी प्रकार जब तक जीवों को चिन्ता (विकल्प) है...** पर के! **तब तक संसार है।** आहाहा! अपनी चिन्ता या अपने भाव के अतिरिक्त कोई भी विकल्प आवे, वह संसार है। आहाहा!

संसार आत्मा से भिन्न नहीं रहता। स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, लक्ष्मी, मकान संसार नहीं है, वह तो पर चीज़ है। परमात्मा संसार तो उसे कहते हैं कि तेरी चीज़ से विरुद्ध तेरी दृष्टि और राग-द्वेष तेरी पर्याय में रहते हैं, वह संसार है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार वह तो परचीज़ है, वह संसार नहीं है। वह तेरा अवगुण है, वह तेरी पर्याय में है। तेरा अवगुण-संसार कहीं बाहर में नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक कहा... आहाहा! कि जब तक अग्नि में लकड़ियाँ पड़ी हों, तब तक अग्नि वृद्धि पाती है; आहाहा! उसी प्रकार जब तक जीव को पर का लक्ष्य रहेगा... आहाहा! जब तक अग्नि में ईंधन है, तब तक अग्नि जलेगी; उसी प्रकार जब तक आत्मा में परद्रव्य की ओर का विकल्प रहेगा... आहाहा! तब तक संसार है। परद्रव्य की ओर का

राग, चाहे तो पंच परमेष्ठी हो, तीन लोक के नाथ के प्रति लक्ष्य जाए तो राग उत्पन्न होगा और राग, वह संसार है। आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब वह तो परद्रव्य है। वह तो तेरे पास है ही नहीं। स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, लक्ष्मी, मकान, वह तो पर में है। तेरे पास तो अपने चैतन्य को भूलकर परद्रव्य में तेरा लक्ष्य जाता है और परद्रव्य के लक्ष्य में यह मेरा है, मेरा है—ऐसी मान्यता उठती है, वह संसार है। तब तक संसार है। जब तक अग्नि में लकड़ी पड़ी है, तब तक अग्नि प्रज्वलित है। उसी प्रकार आत्मा में चैतन्य-चैतन्य अग्नि... जब तक राग आता है, तब तक राग सुलगता है, राग सुलगेगा। आहाहा! चैतन्य प्रभु नहीं सुलगेगा। आहाहा!

अभी ऐसी बात सुनी न हो। अब उसे सुने बिना समझ में किस प्रकार आये? यह चौरासी के अवतार में भटकना, यह दुःखी-दुःखी है। चींटी, कौआ, सूअर, नरक और नारकी के भव अनन्त किये हैं। अनन्त-अनन्त भव किये हैं। यह भव, पहले भव.. भव.. भव.. भव.. अनन्त-अनन्त किये। इस मिथ्यात्व के कारण। निजद्रव्य की दृष्टि छोड़कर परद्रव्य का आश्रय लेकर लाभ माना, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! इस कारण से चार गति में अनन्त भव करता है, भटकता है। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव कड़क हैं। दृष्टान्त कैसा कहा!

ईंधनयुक्त अग्नि वृद्धि को प्राप्त होती है... इसी प्रकार आत्मा में अपने स्वभाव को छोड़कर परद्रव्य के विकल्प में रुकेगा तो संसार सुलगेगा। तुझे संसार उत्पन्न होगा। जन्म-मरण में जाना पड़ेगा। आहाहा! ऐसा सुनने को मिले नहीं, वह कब विचार करे? सब करो, व्रत करो, तप करो, अपवास करो, यह करो, बस! यह करो... करो... और करो... महाव्रत ले लो, मुनिपना ले लो, नग्नपना हो जाओ, परन्तु सम्यक्त्व के बिना तेरा नग्नपना द्रव्यलिंग धारण है। आहाहा! आत्मज्ञान के बिना सब चीज़ मिथ्याभ्रान्ति है। आहाहा! २४६ हुआ।

गाथा-१४६

परिचत्ता परभावं अप्पाणं झादि णिम्मल-सहावं।
अप्पवसो सो होदि हु तस्स दु कम्मं भणंति आवासं।।१४६।।

परित्यक्त्वा परभावं आत्मानं ध्यायति निर्मलस्वभावम्।
आत्मवशः स भवति खलु तस्य तु कर्म भणन्त्यावश्यम्।।१४६।।

अत्र हि साक्षात् स्ववशस्य परमजिनयोगीश्वरस्य स्वरूपमुक्तम्। यस्तु निरुपरागनिरञ्जन-स्वभावत्वादौदयिकादिपरभावानां समुदयं परित्यज्य कायकरणवाचामगोचरं सदा निरावरण-त्वान्निर्मलस्वभावं निखिलदुरघवीरवैरिवाहिनीपताकालुण्टाकं निजकारणपरमात्मानं ध्यायति स एवात्मवश इत्युक्तः।

तस्याभेदानुपचाररत्नत्रयात्मकस्य निखिलबाह्यक्रियाकाण्डाडम्बरविविधविकल्पमहा-कोलाहलप्रतिपक्षमहानन्दानन्दप्रदनिश्चयधर्मशुक्लध्यानात्मकपरमावश्यककर्म भवतीति।

जो छोड़कर परभाव ध्यावे शुद्ध निर्मल आत्म रे।
वह आत्मवश है श्रमण, आवश्यक करम होता उसे॥१४६॥

अन्वयार्थ : [परभावं परित्यक्त्वा] जो परभाव को परित्याग कर [निर्मल-स्वभावम्] निर्मल स्वभाववाले [आत्मानं] आत्मा को [ध्यायति] ध्याता है, [सः खलु] वह वास्तव में [आत्मवशः भवति] आत्मवश है [तस्य तु] और उसे [आवश्यम् कर्म] आवश्यक कर्म [भणन्ति] (जिन) कहते हैं।

टीका : यहाँ वास्तव में साक्षात् स्ववश परमजिनयोगीश्वर का स्वरूप कहा है।

जो (श्रमण) निरुपराग निरंजन स्वभाववाला होने के कारण औदयिकादि परभावों के समुदाय को परित्याग कर, निज कारणपरमात्मा को—कि जो (कारणपरमात्मा) काया, इन्द्रिय और वाणी को अगोचर है, सदा निरावरण होने से

निर्मल स्वभाववाला है और समस्त [१]दुरघरूपी वीर शत्रुओं की सेना के ध्वज को लूटनेवाला है उसे—ध्याता है, उसी को (-उस श्रमण को ही) आत्मवश कहा गया है। उस अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयात्मक श्रमण को समस्त बाह्यक्रियाकाण्ड-आडम्बर के विविध विकल्पों के महा कोलाहल से प्रतिपक्ष [२]महा-आनन्दानन्दप्रद निश्चयधर्मध्यान तथा निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप परमावश्यक-कर्म है।

गाथा -१४६ पर प्रवचन

१४६ (गाथा)

परिचत्ता परभावं अप्पाणं झादि णिम्मल-सहावं।
अप्पवसो सो होदि हु तस्स दु कम्मं भणंति आवासं।।१४६।।

नीचे श्लोक-

जो छोड़कर परभाव ध्यावे शुद्ध निर्मल आत्म रे।
वह आत्मवश है श्रमण, आवश्यक करम होता उसे॥१४६॥

टीका : यहाँ वास्तव में साक्षात् स्ववश... आत्मा के वश। **परमजिनयोगीश्वर का स्वरूप कहा है।** मुनि तो आत्मा के वश हुए हैं। मुनि, वह पंच महाव्रत और राग की, देह की क्रिया में नहीं है। आहाहा! नग्नपना, वह तो जड़ की क्रिया है। पंच महाव्रत, वह आस्रव-दुःख की क्रिया है। आहाहा! उसमें मुनि नहीं रहते। आहाहा! कहते हैं कि **यहाँ वास्तव में साक्षात् स्ववश परमजिनयोगीश्वर...** परमजिनयोगीश्वर। आत्मा, आत्मा में लगाना। लगनी लगाकर अन्दर एकाग्र होना। अतीन्द्रिय वीतरागता और अतीन्द्रिय ज्ञान-आनन्द में परम उत्कृष्टरूप से लीनता होना, वह मुनिपना है। बाकी तो सब वेशधारी द्रव्यलिंगी है। आहाहा!

जो (श्रमण) निरुपराग निरंजन स्वभाववाला होने के कारण... आहाहा!

---

१. दुरघ=दुष्ट अघ; दुष्ट पाप। (अशुभ तथा शुभ कर्म दोनों दुरघ हैं।)

२. परम आवश्यक कर्म निश्चयधर्मध्यान तथा निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप है—कि जो ध्यान महा आनन्द-आनन्द के देनेवाले हैं। यह महा आनन्द-आनन्द विकल्पों के महा कोलाहल से विरुद्ध हैं।

औदयिकादि परभावों के समुदाय को परित्याग कर,... आहाहा! क्या कहते हैं? इससे अधिक लिया। जो मुनि अपना निरुपराग-रागरहित निरंजन स्वभाववाला ऐसा प्रभु, ऐसा होने के कारण औदयिकादि... आहाहा! राग का उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव। **औदयिकादि परभावों के समुदाय को परित्याग कर,...** आहाहा! दूर गये। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर, फिर द्रव्य का भेद छोड़ना; अब कहते हैं कि... आहाहा! तेरी पर्याय में जो औदयिकभाव होते हैं, उदय, उपशम, क्षयोपश्मा, क्षायिक, उन्हें भी छोड़कर त्रिकाली तत्त्व की दृष्टि करना। आहाहा! एक समय में त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु सच्चिदानन्द-सत् चिदानन्द आत्मा ध्रुव विराजता है... आहाहा! पर्याय का लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली का लक्ष्य करना और दृष्टि वहाँ लगाना। वह स्ववश प्राणी है, वह स्वाधीन है और उसे धर्म होता है। पर के वश होता है, उसे धर्म नहीं होता। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)